THE TIMES OF INDIA

Date:03-10-19

SC/ST act overreach

Draconian laws tend to net innocents too in their quest to deter lawbreakers

TOI Editorials

Following in the footsteps of the central government which used the legislative route to nullify a Supreme Court bench order — that whittled down arrest provisions in the SC/ST Prevention of Atrocities (PoA) Act – a larger SC bench has now overruled that verdict. The earlier judgment had taken note of false cases and high acquittal rate in PoA Act cases to allow the option of anticipatory bail to accused. The order also mandated a preliminary inquiry before lodging of FIR and approval of senior police officers before an accused can be arrested. In many PoA Act cases involving verbal slurs it is often one man's word against another — where arrest becomes excessive and even counterproductive.

However, the two-judge bench's intention of preventing misuse of a special law and violation of fundamental rights of accused was quickly overtaken by a political firestorm that dubbed the verdict anti-Dalit and anti-Adivasi. The government responded with a two-prong legislative push: one law to bypass the verdict and cool Dalit anger and another to mollify upper castes through a 10% EWS quota. While the restoration of a special law and the institution of new reservations achieved the task of appeasement, structural problems like the continuance of caste oppression, the false cases and low conviction rate in PoA Act cases were glossed over.

The same bench had also curbed arrest provisions in IPC Section 498A that make even relatives of the husband vulnerable to arrest when a wife complains of marital cruelty. While that judgment was also overruled by a larger SC bench, the review order left the anticipatory bail provision intact and supported the expeditious hearing of bail pleas. Denying safeguards like anticipatory bail and quick disposal of bail pleas amounts to presumption of guilt amid mindless application of laws by police. Ultimately, such stringent provisions only contribute to vitiating noble intentions of the PoA Act.

THE ECONOMIC TIMES

Date:03-10-19

Help strengthen state government finances

Pay off high-cost loans with new,cheap ones

ET Editorials

The states together account for nearly 60% of total government spending in India — they outspend the Centre. Their finances matter, to social welfare, capital formation, the bond market and to overall economic health. The 2019-20 edition of the RBI's study of state finances advises states to lower their

debt burden, 25% of GDP now, to 20% of GDP by 2024-25. Their borrowings are budgeted to be contained at 2.5% of the GDP this fiscal. Political failure to collect user charges in the power sector has pushed the debts of state power utilities to the books of the states, under the Ujwal Discom Assurance Yojana. Interest payments have pre-empted a larger share of revenues. To lower debt servicing costs in the future, it makes sense for states to borrow in the current lower interestrate regime to retire expensive debt.

The Centre's debt swap scheme from 2002-03 to 2004-05 serves as a model of prepaying expensive loans with cheaper new ones. The Centre should facilitate states now to undertake a debt-swap scheme that will bring down interest payments in future, even while the stock of debt remains the same. This will help states lower their future revenue and fiscal deficits. The RBI pats states for maintaining fiscal discipline, but is dismayed at the sharp cutback in capital expenditure. The regulator's concerns are not misplaced. However, states have little flexibility in fiscal expansion as they cannot borrow an extra rupee — over and above their budgeted target for borrowings — without the Centre's approval.

Rightly, RBI wants states to improve tax buoyancy, utilising efficiency gains under the goods and services tax and digitisation and by mustering political courage to levy reasonable user charges, particularly in the power sector. At the same time, the Finance Commission must refrain from shoring up the Centre's finances at the expense of the states, as it is being nudged to, via elements of its regular and additional terms of reference, particularly those seeking reduction of the divisible pool of taxes and asking the states to fund defence expenditure.

दैनिक भास्कर

Date:03-10-19

आर्थिक संकट से उबरने के लिए सुनने की उदारता जरूरी

संपादकीय

जाने-माने अर्थशास्त्री और स्वतंत्र विचार रखने वाले सांसद लेकिन सत्ताधारी भाजपा के नेता सुब्रह्मण्यम स्वामी से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को 'अप्रिय सत्य' सुनने का मिज़ाज पैदा करने की सलाह दी है। उनका कहना था कि अगर वर्तमान आर्थिक संकट से उबरना है तो अपने अर्थशास्त्रियों को खुलकर आर्थिक नीतियों पर बोलने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर रघुराम राजन के हाल ही में लिखे ब्लॉग का भी यही आशय था कि आलोचना सुनने से नीतियों और उठाए गए आर्थिक कदमों की खामियां व त्रुटियां मालूम पड़ती है, जिन्हें सुधारकर सही दिशा में बढ़ा जा सकता है। अंग्रेज़ी की एक मशहूर कहावत है, 'जब लोगों को बोलने दिया जाता है तो उसे स्वतंत्रता कहते हैं लेकिन जब सरकारें उन आवाजों को सुनती हैं तो उसे प्रजातंत्र कहते हैं।' 'हाउडी मोदी' और संयुक्त राष्ट्र महासभा में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के भाषण की देश में ही नहीं दुनिया में तारीफ हुई। यहां तक कि पाकिस्तान में भी तमाम नेताओं और तंजीमों ने भी पाकिस्तान प्रधानमंत्री इमरान खान के भाषण को हल्का और 'मुसलमान और इस्लाम बनाम पूरी दुनिया' का द्वंद्व का हिमायती और बेवजह धमकाने वाला बताया। क्या आज भारत में यह स्थिति है कि

कोई बड़ा निष्पक्ष विद्वान या नेता इमरान खान के भाषण के उस अंश की तारीफ कर सके जिसमें अमरीका को तालिबान और अल-कायदा के आतंकियों की पहली पौध लगाने वाला बताया? केंद्र सरकार के आधा दर्जन मंत्री उसे अगले दिन ही पाकिस्तानी भेजने और राष्ट्रद्रोही बताने में लग जाते हैं। इन मंत्रियों के पास हजारों-लाखों करोड़ का बजट हर साल देश को विकास के जरिये बेहतर करने के लिए मिलता है। नोटबंदी, बेहद जटिल जीएसटी और उस पर अमल की गलतियां, आयुष्मान योजना की गंभीर खामियों के बावजूद खूबसूरत तस्वीर पेश करना या बगैर विकल्प दिए और उसका समुचित उत्पादन किये प्लास्टिक पर अघोषित पाबंदी से छोटे व्यापारियों और आमजन पर होने वाले सरकारी जुल्म अभी तक सरकार के संज्ञान में नहीं आ सकें हैं। अलोचना को स्वीकार ही नहीं करना बल्कि गौर करके सही पाए जाने पर सुधार करना ही लोकतंत्र की मूल भावना है।

Date:03-10-19

भारत और दुनिया को क्यों है गांधी की जरूरत?

संदर्भ- मानव एकता से टिकाऊ विकास और आर्थिक आत्मनिर्भरता तक हर समस्या का समाधान देते हैं महात्मा

नरेंद्र मोदी , प्रधानमंत्री

डॉ. मार्टिन लुथर किंग जूनियर जब 1959 में भारत आए तो उन्होंने कहा, 'दूसरे देशों में मैं एक पर्यटक की तरह जा सकता हूं, लेकिन भारत में मैं एक तीर्थयात्री हूं।' उन्होंने कहा, 'शायद अन्य बातों से बढ़कर भारत ऐसी भूमि है जहां अहिंसक सामाजिक बदलाव की तकनीकें विकसित की गईं, जिन्हें मेरे लोगों ने अलाबामा के मोंटगोमेरी और अमेरिका के पूरे दक्षिण में आजमाया है। हमने उन्हें प्रभावी पाया है- वे काम करती हैं!'

जिसके कारण डॉ. किंग भारत आए,वह राह दिखाने वाली रोशनी मोहन दास करमचंद गांधी, महात्मा थे। बुधवार को हमने उनकी 150वीं जयंती मनाई। बापू दुनियाभर में करोड़ों लोगों को आज भी हौसला दे रहे हैं। प्रतिरोध के गांधीवादी तरीकों ने कई अफ्रीकी देशों में उम्मीद की भावना प्रज्वलित की। डॉ. किंग ने कहा था, 'जब मैं पश्चिम अफ्रीका में घाना गया तो प्रधानमंत्री नक्रुमाह ने मुझसे कहा कि उन्होंने गांधीजी के काम के बारे में पढ़ा है और महसूस किया कि अहिंसक प्रतिरोध का वहां विस्तार किया जा सकता है। हमें याद आता है कि दक्षिण अफ्रीका में भी बस बॉयकाट हुए हैं।'

नेल्सन मंडेला ने गांधीजी को 'पवित्र योद्धा' कहते हुए लिखा, 'असहयोग की उनकी रणनीति, उनका इस बात पर जोर देना कि हम पर किसी का प्रभुत्व तभी चलेगा जब हम हमें अधीन रखने वाले से सहयोग करेंगे। और उनके अहिंसक

प्रतिरोध ने हमारी सदी में कई उपनिवेश और नस्लवाद विरोधी आंदोलनों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रेरित किया।' मंडेला के लिए गांधी भारतीय और दक्षिण अफ्रीकी थे। गांधीजी भी उनसे सहमत होते। उनमें मानव समाज के सबसे बड़े विरोधाभासों में पुल बनने की अनूठी योग्यता थी। 1925 में गांधी ने 'यंग इंडिया' में लिखा : 'किसी व्यक्ति के लिए राष्ट्रवादी हुए बगैर अंतरराष्ट्रीयवादी होना असंभव है। अंतरराष्ट्रीयवाद तभी संभव होता है जब राष्ट्रवाद एक तथ्य बन जाता है अर्थात जब अलग-अलग देशों के लोग संगठित होते हैं और फिर मिलकर कार्य करने में कामयाब होते हैं।' उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद की इस रूप में कल्पना की थी कि जो संकुचित न हो बल्कि ऐसा हो जो पूरी मानवता की सेवा करे।

महात्मा गांधी समाज के सभी वर्गों में भरोसे के प्रतीक भी थे। 1917 में गुजरात के अहमदाबाद में कपड़ा मील की बड़ी हड़ताल हुई। जब मिल मालिकों और श्रमिकों के बीच टकराव बहुत बढ़ गया तो गांधीजी ने मध्यस्थता करके न्यायसंगत समझौता कराया। गांधीजी ने श्रमिकों के अधिकारों के लिए मजूर महाजन संघ गठित किया था। इससे उजागर होता है कि कैसे छोटे कदम बड़ा प्रभाव छोड़ते हैं। उन दिनों 'महाजन' शब्द का उपयोग श्रेष्ठिवर्ग के लिए आदर स्वरूप प्रयोग किया जाता था। गांधीजी ने 'महाजन' के साथ 'मजूर' जोड़कर सामाजिक संरचना को उलट दिया। श्रमिकों के गौरव को बढ़ा दिया था। और गांधीजी ने साधारण चीजों को व्यापक जनमानस की राजनीति से जोड़ा। चरखे और खादी को राष्ट्र की आत्म-निर्भरता और सशक्तिकरण से और कौन जोड़ सकता था? चुटकी भर नमक से कौन विशाल जन-आंदोलन खड़ा कर सकता था! औपनिवेशिक राज में नमक कानून के तहत भारतीय नमक पर लगाया नया टैक्स बोझ था। 1930 की दांडी यात्रा के माध्यम से गांधीजी ने नमक कानून को चुनौती दी और ऐतिहासिक सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू हो गया। दुनिया में कई जन-आंदोलन हुए हैं, कई तरह के स्वतंत्रता संघर्ष, भारत में भी। लेकिन जनता की व्यापक भागीदारी गांधीवादी संघर्ष या उनसे प्रेरित संघर्षों को उनसे अलग करती है।

उनके लिए स्वाधीनता विदेशी शासन की गैर-मौजूदगी का नाम नहीं था। उन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत सशक्तिकरण में गहरा संबंध देखा। उन्होंने ऐसी दुनिया की कल्पना की थी, जिसमें हर नागरिक के लिए गरिमा व समृद्धि हो। जब दुनिया अधिकारों की बात करती है तो गांधी कर्तव्यों पर जोर देते हैं। उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा : 'कर्तव्य ही अधिकारों का सच्चा स्रोत है। यदि हम सब अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें तो अधिकार ज्यादा दूर नहीं रहेंगे।' 'हरिजन' पत्रिका में उन्होंने लिखा, 'जो अपने कर्तव्यों को व्यवस्थित ढंग से अंजाम देता है उसे अधिकार अपने आप मिल जाते हैं।' धरती के उत्तराधिकारी के रूप में हम इसके कल्याण के लिए भी जिम्मेदार हैं, जिसमें इसकी वनस्पतियां और जीव शामिल हैं। गांधीजी के रूप में हमें मार्गदर्शन देने वाला सर्वश्रेष्ठ शिक्षक उपलब्ध है। मानवता में भरोसा रखने वालों को एकजुट करने से लेकर टिकाऊ विकास को आगे बढ़ाने और आर्थिक स्वावलम्बन सुनिश्चित करने तक गांधी ने हर समस्या का समाधान देते हैं। हम भारतीय इस दिशा में अपना दायित्व निभा रहे हैं। जहां तक गरीबी मिटाने की बात है भारत सबसे तेजी से काम करने वाले देशों में है। स्वच्छता के हमारे प्रयासों ने दुनिया का ध्यान खींचा है। इंटरनेशनल सोलर अलायंस जैसे प्रयासों के माध्यम से भारत अक्षय ऊर्जा स्रोतों के दोहन में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। इस अलायंस ने कई देशों को टिकाऊ भविष्य की खातिर सौर ऊर्जा के दोहन के लिए एक किया है। हम दुनिया के साथ मिलकर और दुनिया के लिए और भी बहुत कुछ करना चाहते हैं।

गांधीजी को शृद्धांजलि देने के लिए मैं उस बात की पेशकश करता हूं जिसे मैं आइंस्टीन चैलेंज कहता हूं। हम गांधीजी के बारे में अल्बर्ट आइंस्टीन का प्रसिद्ध वक्तव्य जानते हैं, 'आने वाली पीढ़ियां मुश्किल से ही विश्वास करेगी कि रक्त-मांस का जीता-जागता ऐसा कोई व्यक्ति धरती पर हुआ था।' हम यह कैसे सुनिश्चित करें कि गांधीजी के आदर्श भावी

पीढ़ियां भी याद रखें? मैं विचारकों, उद्यमियों और टेक्नोलॉजी लीडर्स को आमंत्रित करता हूं कि वे इनोवेशन के जरिये गांधीजी के विचारों को फैलाने में अग्रणी भूमिका निभाएं।

आइए, हमारी दुनिया को समृद्ध बनाने और नफरत और तकलीफों से मुक्त करने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर काम करें। तभी हम महात्मा गांधी के सपने को पूरा करेंगे, जो उनके प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो' में व्यक्त हुआ है। यह कहता है कि सच्चा मानव वह है जो दूसरे के दर्द को महसूस कर सके, तकलीफों को दूर करें और इसका उसे कभी अहंकारनहो।
दुनिया का आपको नमन, प्रिय बापू!

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:03-10-19

अमेरिका के साथ भारत के कारोबारी मसलों का हल

भारत और अमेरिका अहम व्यापारिक समझौते पर पहुंच सकते हैं लेकिन यह अनुमान गलत था। द्विपक्षीय मुक्त व्यापार समझौता या आर्थिक सहयोग समझौता चर्चा के बिंदुओं में शामिल नहीं था।

अमिता बत्रा , (लेखिका जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के अंतरराष्ट्रीय अध्ययन केंद्र में प्रोफेसर हैं)

ऐसे सप्ताह में जब अमेरिका के साथ भारत की कूटनीतिक सफलता नई ऊंचाइयों पर पहुंची, भारत और अमेरिका के बीच कारोबारी बातचीत अपेक्षाकृत खामोश बनी रही। इसमें चकित होने वाली कोई बात नहीं क्योंकि अमेरिका के करीबी साझेदार भी राष्ट्रपति ट्रंप की शत्रुतापूर्ण व्यापार नीति संबंधी कदमों से बच नहीं सके। बीते एक वर्ष में भारत को उच्च शुल्क दर, सीमित बाजार पहुंच और कारोबार के माहौल के लिए बार-बार आलोचना का सामना करना पड़ा है।

अमेरिकी राष्ट्रपति ने हार्ली डेविडसन मोटर साइकिल पर आयात शुल्क का बार-बार उल्लेख अवश्य किया लेकिन अमेरिका ने इससे कहीं अधिक गहरे नीतिगत कदम उठाए। उसने जनरल सिस्टम ऑफ प्रिफरेंस प्रोग्राम के तहत भारत तथा कुछ अन्य देशों को दी जाने वाली प्राथमिकता समाप्त कर दी। गत वर्ष जून में अमेरिका ने स्टील और एल्युमीनियम के आयात पर क्रमश: 25 फीसदी और 10 फीसदी शुल्क लगा दिया। भारत को अब इसमें रियायत नहीं मिल रही थी जबकि कनाडा और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों को यह रियायत उपलब्ध थी। हालांकि भारत ने विश्व व्यापार संगठन के समक्ष अपनी शिकायत दर्ज की लेकिन इसकी अपील संस्था की नई नियुक्तियों को लेकर अमेरिकी निष्क्रियता ने इस बहुपक्षीय संस्थान की प्रणाली को कमजोर कर दिया है। ऐसे में पंजीकृत विवादों का समय पर निस्तारण मुश्किल है। ऐसे में भारत ने भी अमेरिका से होने वाले 29 जिंसों के आयात पर शुल्क बढ़ाकर प्रतिक्रिया दी।

इन तमाम नीतिगत निर्णयों का भारत-अमेरिका द्विपक्षीय व्यापार पर भले ही बहुत अधिक असर न पड़े लेकिन इसे तात्कालिक व्यापारिक नुकसान के रूप में नहीं देखा जा सकता बल्कि घरेलू उत्पादकों के समक्ष प्रतिस्पर्धा में भी भारी इजाफा होना तय है। ऐसा इसलिए क्योंकि भारतीय निर्यातकों को एमएफएन टैरिफ का सामना करना पड़ेगा और निर्यात बाजार में उनकी हिस्सेदारी पर भी असर होगा। उच्च शुल्क के कारण कुछ जिंस का कारोबार भी प्रभावित होगा।

हाल के वर्षों में भारत-अमेरिका द्विपक्षीय कारोबार में सकारात्मक वृद्धि देखने को मिली है। वर्ष 2015-16 की गिरावट के बाद 2016-17 में कुल व्यापार बढ़ा। बाद के दो वर्षों में इसमें और इजाफा हुआ। वर्ष 2017-18 में अमेरिका के साथ भारत का कारोबार 15 फीसदी और 2018-19 में 18 फीसदी बढ़ा। कई वर्षों तक चीन से पीछे रहने के बाद आखिरकार 2018-19 में अमेरिका भारत का सबसे बड़ा कारोबारी साझेदार बन गया। दोनों देशों का कुल कारोबार 8,700 करोड़ अमेरिकी डॉलर रहा। आयात में भारी वृद्धि हुई और यह 2017-18 के 19.29 फीसदी से बढ़कर 2018-19 में 33.59 फीसदी हो गया। बहरहाल, निर्यात वृद्धि 2017-18 के 13.42 फीसदी से घटकर 2018-19 में 9.46 फीसदी रह गई। 2018-19 में जहां तमाम विपरीत नीतिगत बदलाव हुए, वहीं भारत के कुल कारोबार में अमेरिका की हिस्सेदारी थोड़ी और बढ़कर 10.42 फीसदी हो गई।

वरीयता कम करने का असर रसायन, प्लास्टिक, मशीनरी और मैकेनिकल उपकरण, इलेक्ट्रिकल उपकरण, फोटोग्राफिक, ऑप्टिकल, मेडिकल, सर्जिकल उपकरण आदि क्षेत्रों में देखने को मिल सकता है। ये वे क्षेत्र हैं जिनमें सबसे अधिक जिंस जीएसपी रियायत के अधीन आती थीं। ये तमाम क्षेत्र देश के शीर्ष 20 निर्यात क्षेत्रों में आते है, अमेरिका भारत के लिए सबसे बड़ा या दूसरा सबसे बड़ा निर्यात बाजार है। बीते दो वर्षों में भारत के कुल निर्यात में अमेरिकी बाजार की हिस्सेदारी की बात करें तो बिजली मशीनरी के 7 फीसदी से यह मशीन एवं अन्य उपकरणों में यह 20 फीसदी तक रही। परंतु रसायन के अलावा इन क्षेत्रों में अमेरिका के कुल आयात में भारत की हिस्सेदारी बेहद कम यानी एक फीसदी या उससे कम है। रसायन में यह यह 4.6 फीसदी है। जीएसपी समाप्त होने के बाद चूंकि भारतीय निर्यात को एमएफएन शुल्क का सामना करना पड़ता है तो उसे चीन, जर्मनी, जापान, दक्षिण कोरिया तथा अन्य विकसित देशों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। ये देश अपने-अपने क्षेत्र में अमेरिका को निर्यात करने वाले प्रमुख देश हैं। इन विकसित देशों से कड़ी प्रतिस्पर्धा के बीच भारत शायद अमेरिकी बाजार में अपनी मामूली हिस्सेदारी बचाए न रख सके।

स्टील निर्यात में 2018-19 में 34 फीसदी की गिरावट देखने को मिली। इस वर्ष मई में इसका निर्यात तीन वर्ष के निचले स्तर पर आ गया। ऐसा अमेरिका द्वारा टैरिफ बढ़ाने तथा अन्य आयात करने वाले देशों द्वारा सुरक्षा उपाय अपनाने से हुआ। हमारे कुल निर्यात में एल्युमीनियम निर्यात की हिस्सेदारी 2018-19 में 1.4 फीसदी थी जो अब घटकर 1.1 फीसदी रह गई।

भारत ने भी प्रतिक्रियास्वरूप शुल्क बढ़ाया। अमेरिकी निर्यात में बादाम 54 फीसदी, सेब 15 फीसदी, फॉस्फोरिक ऐसिड 33.7 फीसदी और लोहे तथा गैर अलॉय स्टील उत्पाद 29.7 फीसदी की हिस्सेदारी रखते हैं। बहरहाल अमेरिकी निर्यात में जबरदस्त हिस्सेदारी के साथ ही ये उत्पाद भारत के कुल आयात के लिए भी मायने रखते हैं। वर्ष 2018-19 में देश के बादाम आयात में से 80 फीसदी, अखरोट और ताजे सेब में से 47 फीसदी तथा स्टील आयात में से 41 फीसदी, अमेरिका से आए थे। कहा जा सकता है कि उच्च शुल्क दर भारतीय आयातकों को भी नुकसान पहुंचा रही है। प्रतिक्रियास्वरूप उठाए गए कदमों से कुछ खास हासिल नहीं हुआ और शायद इससे अमेरिका पर इतना दबाव भी नहीं बना कि वह भारत का दर्जा बरकरार कर दे।

ई-कॉमर्स कृषि क्षेत्र में बढ़ी हुई बाजार पहुंच, आईसीटी उत्पादों पर घटा हुआ शुल्क तथा डेरी उत्पादों में आधुनिकीकरण आदि से संबंधित अमेरिकी मांग के कारण भी काफी दिक्कत बनी हुई है। यह आसानी से स्वीकार्य नहीं है क्योंकि भारत बहुपक्षीय स्तर पर भी और द्विपक्षीय मुक्त व्यापार वार्ताओं में भी इन मसलों से जूझ रहा है। चुनिंदा चिकित्सा उपकरणों की मूल्य सीमा समाप्त करना भी अमेरिका की मांगों में शामिल है। ऐसा करना भी कठिन है क्योंकि सस्ती स्वास्थ्य सेवा भारत की प्राथमिकता में है।

हालिया यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच व्यापार समझौते की उम्मीद या उसका जिक्र सिरे से गलत था क्योंकि किसी द्विपक्षीय मुक्त व्यापार समझौते या आर्थिक साझेदारी पर चर्चा ही नहीं होनी थी। हां, इस दौरान एकपक्षीय तदर्थ व्यापार नीति उपायों को वापस लिए जाने की उम्मीद जरूर की जा सकती थी। परंतु चूंकि व्यापार नीति को राष्ट्रपति ट्रंप एक अहम राजनीतिक हथियार की तरह इस्तेमाल कर रहे हैं ऐसे में भारत के लिए इसे हासिल करना भी कतई आसान नहीं था। बादाम, अखरोट और सेब के आयात शुल्क के बदले कुछ प्रमुख निर्यात उत्पादों को वापस वरीयता देने का अनुरोध करना भारत के लिए अधिक व्यवहार्य होगा। अगले कुछ दिन में जब बातचीत दोबारा शुरू होगी तो इस दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए।

Date:02-10-19

सफलता के सफर में मील के नए पत्थर

स्वच्छ भारत अभियान की सफलता से यह उम्मीद बंधी है कि देश जल आपूर्ति हासिल करने और प्लास्टिक कचरे से मुक्ति पाने में भी कामयाब होगा।

परमेश्वरन अय्यर , (लेखक पेयजल एवं स्वच्छता विभाग, जल शक्ति मंत्रालय में सचिव हैं)

अहमदाबाद में सुप्रसिद्घ साबरमती नदी के तट पर करीब 20,000 ऐसे सरपंच और स्वच्छाग्रही आज एकत्रित हो रहे हैं जो जमीनी स्तर पर स्वच्छता के लिए काम करते हैं। ये तमाम लोग ऐसे ऐतिहासिक अवसर पर एकत्रित हो रहे हैं जब देश महात्मा गांधी की 150वीं वर्षगांठ मना रहा है। हम उन्हें एक स्वच्छ भारत की सौगात देने जा रहे हैं जो शायद उन्हें समर्पित की जाने वाली सबसे उपयुक्त श्रद्घांजलि होगी। जमीनी स्तर पर स्वच्छता के काम से जुड़े लाखों लोग इस आयोजन को अपने गांवों में लाइव देख सकेंगे। देश की स्वच्छता क्रांति के वास्तुशिल्पी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इस अवसर पर एकत्रित जनसमूह के साथ-साथ देश को संबोधित करेंगे और उन यादों को ताजा करेंगे जब पांच साल पहले उन्होंने लाल किले के प्राचीर से लोगों के व्यवहार में तब्दीली लाने वाले सबसे बड़े अभियान की शुरुआत की थी।

इस अवधि में देश ने खुले में शौच वाले दुनिया के सबसे बड़े देश से स्वच्छता अभियान का प्रेरक बनने तक का सफर तय किया है। भारत का यह सफर कई देशों के लिए प्रेरणा का काम कर रहा है और वे भी इस व्यापक सामाजिक, स्वास्थ्य संबंधी, आर्थिक और पर्यावरण संबंधी प्रभाव वाली चुनौती से निपटने की दिशा में पहल कर रहे हैं। जब स्वच्छ भारत मिशन की शुरुआत हुई थी तब भारत में स्वच्छता का कवरेज केवल 39 फीसदी था। महज पांच वर्ष में देश के

ग्रामीण इलाकों में 10 करोड़ से अधिक शौचालय बने हैं और करीब 60 करोड़ लोगों ने खुले में शौच करना बंद कर दिया है। देश के सभी राज्यों ने खुद को खुले में शौच से मुक्त घोषित कर दिया है। यह केवल इसलिए संभव हो सका क्योंकि राजनीतिक नेतृत्व साथ था। प्रधानमंत्री मोदी ने इसे निजी तौर पर एक चुनौती के रूप में लिया। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान की गई। इससे देश के नौ करोड़ से अधिक सामाजिक और आर्थिक रूप से गरीब परिवारों को शौचालय निर्माण में सहायता मिली। इस बीच सरकार, निजी क्षेत्र और विकास संबंधी क्षेत्रों के बीच जबरदस्त साझेदारी देखने को मिली। सबसे अहम बात यह थी कि यह कार्यक्रम सरकारी योजना से अधिक एक जनांदोलन में तब्दील हो गया। स्वच्छ भारत मिशन इस बात की मिसाल है कि कैसे एक व्यापक कार्यक्रम का तेज गति से क्रियान्वयन किया जाए। प्रधानमंत्री के हस्तक्षेप से इसकी अत्यंत आवश्यकता को महसूस किया गया और देश के विभिन्न राज्यों, जिलों और यहां तक कि गांवों के बीच प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न हुई। राजनीतिक नेतृत्व एकदम निचले स्तर तक शामिल नजर आया। इस कार्यक्रम ने शौचालयों से जुड़े पूर्वग्रह को समाप्त किया। प्रधानमंत्री ने स्वतंत्रता दिवस पर अपने पहले भाषण में इसे प्रमुखता से शामिल किया और छह लाख प्रशिक्षित स्वच्छाग्रहियों के माध्यम से पंचायतों की बैठक, जन सभाओं में और घर-घर जाकर लोगों में व्यवहार के स्तर पर बदलाव को प्रेरित किया गया। दोहरे पिट वाले स्वउपचारित शौचालयों को देश भर में बढ़ावा दिया गया। देश भर के लोगों ने शौचालय के शुष्क अवशिष्टां को खाली कर शौच से जुड़े कलंक को दूर करने में अहम भूमिका निभाई। इस कार्यक्रम में लोगों के व्यवहार में बदलाव पर जोर दिए जाने का एक अर्थ यह भी था कि इस कार्यक्रम में निरंतरता आए। गांवों के लोगों ने प्रेरणा लेकर अपने यहां शौचालय बनवाए और समुदायों में इनके इस्तेमाल को लेकर भी चेतना का प्रचार प्रसार हुआ। ग्राम सभाओं में छह लाख गांवों ने अपने आप को खुले में शौच से मुक्त घोषित किया। हाल ही में सर्वेक्षणों से पता चला है कि शौचालय तक पहुंच रखने वाले 95 फीसदी से अधिक लोग इनका नियमित इस्तेमाल करते हैं।

बहरहाल, अब जबकि इस दिशा में मील का पहला पत्थर हासिल हो चुका है, तो यह सफर जारी रहना चाहिए। हम सभी इस तथ्य से वाकिफ हैं कि व्यवहार में आए बदलाव पर टिके रहने और नए मानक तैयार करने में समय लगा है और इसके लिए मूलभूत संदेश पर बार-बार जोर देना जरूरी होता है। यही कारण है कि गत सप्ताह जारी की गई देश की अग्रसोची 10 वर्षीय स्वच्छता नीति में खुले में शौच मुक्ति को निरंतर जारी रखे जाने को प्राथमिकता दी गई है। यह नीति इस बात को रेखांकित करती है कि कैसे देश आम जनता को व्यवहार में लगातार बदलाव की चर्चा और संवाद के सहारे खुले में शौच मुक्ति के लाभों से अवगत कराया जाएगा। इसके साथ ही यह सुनिश्चित किया जाएगा कि इस दौरान कोई पीछे न छूटने पाए।

राज्यों से भी यह कहा गया है कि वे यदि कोई घर या परिवार किसी तरह पीछे छूट गया है तो उसके यहां शौचालय निर्माण को प्राथमिकता प्रदान की जाए। यह नीति इस बात पर भी केंद्रित है कि हर स्तर पर क्षमता विस्तार हो, वित्तीय सहायता के नए माडल सामने आएं और देश के प्रत्येक गांव में ठोस और तरल कचरे के प्रबंधन को प्रोत्साहित किया जाए। इस दौरान प्लास्टिक कचरे के प्रबंधन को भी तवज्जो दी जाए। स्वच्छ भारत मिशन सहभागिता वाले विकास की नजीर बन चुका है। यहां सरकार पहल करती है और लोग उस कार्यक्रम को पूरा करते हैं। प्रधानमंत्री ने इस वर्ष स्वतंत्रता दिवस पर जो आह्वान किया था उसके तहत देश भर से करोड़ों लोग स्वच्छता ही सेवा अभियान के तहत प्लास्टिक कचरे के संग्रह के लिए श्रमदान की पेशकश कर रहे हैं। इस प्रयास का लक्ष्य है प्लास्टिक से होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए एकल प्रयोग वाले प्लास्टिक का इस्तेमाल बंद करना। जो भी प्लास्टिक एकत्रित होगा उसे सड़क निर्माण आदि में इस्तेमाल करके सुरक्षित ढंग से निपटाया जाएगा। इसके माध्यम से अगले कुछ वर्ष के दौरान देश में एकल प्रयोग वाले प्लास्टिक के इस्तेमाल को समाप्त करने की दिशा में एक मजबूत पहल होगी। सरकार सन 2024 तक देश के सभी

परिवारों को पाइप से पेयजल उपलब्ध कराने की तैयारी में है। इसके लिए न्यूनतम संभव स्तर पर एकीकृत प्रबंधन किया जाएगा। इस योजना में स्रोत की उपलब्धता से लेकर जलापूर्ति और उसके दोबारा उपयोग तक सारी बातें शामिल हैं।

जिस प्रकार देश स्वच्छता के मामले में नए मानक गढ़ने में तैयार रहा, वैसे ही प्लास्टिक कचरे के प्रबंधन और जलापूर्ति को भी जनांदोलन बनाने का लक्ष्य रहेगा। ऐसे आंदोलनों के पीछे 130 करोड़ लोगों की शक्ति है और इसमें दो राय नहीं कि इसे सफलता मिलेगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:01-10-19

सुधार के लिए ब्याज दरों में और कटौती का इंतजार

मौद्रिक नीति समिति बैंक दरों को नीचे रखकर विकास देना चाहती है , तो उसे ज्यादा साहस को परिचय देना होगा।

अनुभूति सहाय, अर्थशास्त्री

इस माह मौद्रिक नीति समिति का फैसला तब आएगा, जब दो अहम बदलाव हो चुके हैं। पहला बदलाव, केंद्र सरकार ने विकास दर में चिंताजनक गिरावट के बाद अर्थव्यवस्था को बल देने के लिए कुछ उपायों या प्रोत्साहनों की घोषणा की है। दूसरा बदलाव, बैंकों की ब्याज दर को आज, यानी 1 अक्तूबर से कुछ बाहरी कारकों (एक्सटर्नल बेंचमार्क) से जोड़ दिया गया है। देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए जो वित्तीय प्रोत्साहन दिए गए हैं, उनका आकार सकल घरेलू उत्पाद के 0.7 प्रतिशत के आसपास है, जिसके परिणामस्वरूप ब्याज दरों में 4 अक्तूबर तक 25 बीपीएस तक की कटौती संभावित है। कई लोग मानते हैं कि वित्तीय प्रोत्साहनों की घोषणा के बाद रेपो रेट (जिस दर पर रिजर्व बैंक अन्य बैंकों को कर्ज देता है) के पांच प्रतिशत से कम होने की संभावना न के बराबर है। फिलहाल बाजार की नजरें मौद्रिक नीति समिति पर टिकी हैं। इंतजार है कि यह समिति भारतीय अर्थव्यवस्था में आगामी तिमाहियों में किस तरह के विकास की उम्मीद रखती है।

हाल ही में कॉरपोरेट टैक्स में जो कटौती की गई है, मध्यावधि रूप से देखें, तो वह सकारात्मक है। हालांकि विकास पर इसका असर कुछ देर से ही होगा। इस कदम से आपूर्ति को लाभ मिलेगा, पर मांग के मोर्चे पर जो कमी अभी चल रही है, उस पर अचानक से कोई असर नहीं होने वाला। हां, सरकार द्वारा घोषित प्रोत्साहनों के कारण आर्थिक गिरावट में कमी आएगी और बाजार में विकास के अनुकूल माहौल बनेगा, पर निकट भविष्य में विकास दर के सात प्रतिशत पर लौटने की संभावना कम है।

अगस्त में जो अनुमान लगाया गया था, उसकी तुलना में विकास दर के अनुमान को और कम करना पड़ सकता है। बैंक दरों में कमी करने की मांग बनी रहेगी। दूसरी ओर, महंगाई कम रखने और विकास को तेज करने का भू-राजनीतिक

दबाव बना रहेगा। मौसम से जुड़े मुद्दे भी अर्थव्यवस्था पर दबाव डालना जारी रखेंगे। मान लीजिए, स्थिति के और बिगड़ने से वित्तीय घाटा मुश्किलें खड़ी करता है, तो तय है कि मौद्रिक नीति समिति विकास से अपना ध्यान नहीं हटा पाएगी। आने वाले दिनों में मौद्रिक नीति समिति के सामने चुनौती बनी रहेगी। ब्याज दरों में आगे कटौती की संभावना बनी रहेगी, क्योंकि बैंक ब्याज दर को बाहरी कारकों, जैसे रेपो रेट से जोड़ दिया गया है। वित्त वर्ष 2021 के लिए 4.75 प्रतिशत टर्मिनल रेपो रेट की उम्मीद की जा सकती है। इस फैसले के लागू होने के बाद बैंक दरों का तत्काल असर सुनिश्चित हो जाएगा।बैंक दरों में किसी कटौती का असर जल्द ही अर्थव्यवस्था तक पहुंच सकेगा। पूर्व में की गई कर कटौती का असर सीमित हो जाएगा और कोई भी कर कटौती तुरंत अर्थव्यवस्था को फायदा पहुंचा सकेगी।

यदि मौद्रिक नीति समिति बैंक दरों को नीचे रखकर विकास को बल देना चाहती है, तो उसे थोड़ा ज्यादा साहस का परिचय देना होगा। उसे रेपो रेट को पांच प्रतिशत से भी नीचे ले जाना होगा। भारतीय रिजर्व बैंक भी अपनी ओर से विकास की रफ्तार लौटाने के लिए प्रयासरत है, उसने अपने आंतरिक कार्य समूह की उस रिपोर्ट को विचार के लिए सबके सामने रख दिया है, जिसमें नकदी प्रबंधन संबंधी सिफारिशें शामिल हैं।आंतरिक समिति ने वर्तमान नकदी प्रबंधन ढांचे में बहुत ज्यादा बदलाव से बचने को कहा है। यह गौर करने की बात है, भारतीय रिजर्व बैंक अपनी नई मौद्रिक घोषणाओं के तहत बैंकिंग सिस्टम में और नकदी बढ़ाने के उपाय घोषित करने वाला है। रिजर्व बैंक आश्वस्त होना चाहता है कि अर्थव्यवस्था में नकदी को लेकर कोई समस्या न रहे। विकास के लिए पर्याप्त नकदी या धन तरलता उपलब्ध रहे। बाजार शुरू से ही ज्यादा नकदी उपलब्धता का पक्षधर रहा है। चूंकि ज्यादातर लोग नकदी प्रबंधन ढांचे में बदलाव के पक्षधर नहीं, इसलिए कुल मिलाकर, अर्थव्यवस्था में सुधार को बल प्रदान करने के लिए बैंक दर संबंधी निर्णय ही एक विकल्प बच जाता है।

आज मौद्रिक नीति समिति खाद्य मुद्रास्फीति और वित्तीय घाटे को लेकर चिंतित है। विश्वास है, बैंक दर में कटौती के लिए उसके दरवाजे खुले हैं। इन तमाम प्रयासों के बावजूद अभी जिस तरह की घरेलू स्थिति है, जैसी वैश्विक अनिश्चितताएं चल रही हैं, उनके कारण जल्दी राहत के मजबूत संकेत नहीं दिखते।

Date:01-10-19

जब शहर ही ऐसे डूबने लगें

हमारी व्यवस्था जिसको सर्वोच्च प्राथमिकता पर रखती है , अगर उसी का यह हल है , तो वह कौन सा दरवाजा बचता है , जिसे खटखटाया जाए ?

दिनेश मिश्र, जल विशेषज्ञ

बिहार के पहले मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह कहा करते थे कि अगर उनका बस चलता, तो वह कोसी नदी को एक-एक महीने के लिए देश के हर प्रांत में भेज दिया करते, तब पूरे देश को पता लगता कि बाढ़ का क्या मतलब होता है। आज अगर वह जीवित होते, तो जरूर प्रसन्न होते कि जो काम वह नहीं कर पाए, वह कुछ अपने आप, और कुछ हमारी गलत

नीतियों के कारण हो रहा है। अब कोसी किसी दूसरे नाम से हरेक प्रांत में बह रही है। बिहार की भूमि ज्यादातर मैदानी इलाके की है। सपाट जमीन पर अगर बाढ़ आती है, तो उसका पानी बड़े इलाके पर फैलता है। इससे बाढ़ का स्तर घटता है। उतना ही पानी अगर ऊबड़-खाबड़ जमीन पर फैले, तो उसे कम जमीन मिलेगी और पानी का स्तर बढ़ जाएगा। एक ही मात्रा का पानी ऊबड़-खाबड़ जमीन पर ज्यादा तबाही मचाता है।

बिहार के कुछ हिस्सों को छोड़ दें, तो प्रकृति ने बिहार को पहाड़ नहीं दिए। यहां के विशेषज्ञों ने इस कमी को पूरा करने के लिए तटबंधों, नहरों, सड़कों और रेल लाइनों का अंधाधुंध निर्माण करके पहाड़ों की कमी को पूरा कर दिया है। जाहिर है, पहले जितना ही पानी अब यहां ज्यादा तबाही मचाएगा। पानी ज्यादा बरस गया, तब तो फिर भगवान ही मालिक है। अभी पटना से जो तस्वीरें आई हैं, उसकी मूल वजह यही है। हालांकि यह कहानी अकेले बिहार की नहीं, पूरे देश की है। यही वजह है कि एक जैसी त्रासदी अलग-अलग जगहों पर लोग भिन्न-भिन्न कारणों से भोगते हैं।

पिछले कुछ वर्षों से देश में शहरी बाढ़ का प्रकोप बढ़ा है। पहले कभी-कभी नागपुर, जालंधर, भोपाल, हैदराबाद, कोलकता, जलपाईगुड़ी, जयपुर या दिल्ली का नाम बाढ़ के लिए सुनाई पड़ता था। अब इस सूची में मुंबई, चेन्नई, बेंगलुरु, नासिक, बांसवाड़ा, वाराणसी, मेहसाना, सूरत, त्रिशूर, अलपूझा आदि जैसे असंभव से नाम जुड़ गए हैं। आजादी के बाद हमने ग्रामीण बाढ़ को शहरी बाढ़ बनाने में, और ढाई दिन की बाढ़ को ढाई महीने की बाढ़ बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

पटना की बाढ़, जो 1975 में आई थी, एक बड़ी त्रासदी के रूप में सामने आई थी। उसमें मध्य और पश्चिमी पटना पूरी तरह बाढ़ के पानी में डूब गया था। वह एक मानव निर्मित त्रासदी थी, जिसमें सोन व गंगा में एक साथ बाढ़ आ गई थी। घाघरा और गंडक ने भी इसमें अपना महत्वपूर्ण योगदान किया था। मगर बाढ़ का मुख्य कारण सोन नहर का टूटना था, जिससे पानी पश्चिम से पूरब की तरफ शहर में आया। उस बार राजेंद्र नगर और पटना सिटी का इलाका बच गया था, पर इस बार यह वर्षा का पानी है, जो 27 अगस्त से प्राय: लगातार बरसता रहा और उसकी निकासी न हो पाने से शहर के पूरब वाले इलाके तो डूबे ही, मध्य पटना भी बाढ़ के काम आया। नतीजा यह है कि शहर में घरों से लोगों का निकलना बंद हो गया। यहां तक तो ठीक है, पर दैनिक जरूरतों के सामान मिलने बंद हो गए, लोगों को डॉक्टरी सहायता नहीं मिल रही है, स्कूल-कॉलेज बंद हैं और शौचालयों का पानी घरों में प्रवेश कर रहा है। बहुत से स्थान पर बिजली नहीं है। यहां तक कि वे पंप, जिनसे पानी की निकासी हो सकती थी, या तो पानी में डूबे पड़े हैं या बिजली के अभाव में काम के लायक नहीं बचे। पीने का पानी नहीं मिल पा रहा है। गोया जितनी भी तकलीफें ऐसी परिस्थिति में सोची जा सकती हैं, उन सभी से पटना वासी जूझ रहे हैं। वर्षा के पानी ने बड़े-छोटे, सबको एक प्लेटफॉर्म पर लाकर सामाजिक समरसता का बहुत बड़ा काम किया है! मंत्री से लेकर फकीर तक, सब एक साथ दुआ मांग रहे हैं। नगर प्रशासन खड़ा होकर अपने किए या न किए कामों का तमाशा देख रहा है। जो नीति-नियंता हैं, वे आश्वासन देने में लगे हैं।

पटना नगर निगम का काम है कि वह जल-निकासी की व्यवस्था सुनिश्चित करे। आज से कोई दस-बारह साल पहले एक जनहित याचिका दायर की गई थी, जब राज्य सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों से तटबंधों द्वारा हुई जल-निकासी के समाधान का वादा किया था। तब इस याचिका में कहा गया था कि जब कानून के आगे सभी लोग बराबर हैं और सरकार ग्रामीण क्षेत्रों से जल-निकासी की व्यवस्था का वादा कर सकती है, तो फिर उसे शहरी क्षेत्र से भी जल-निकासी का इंतजाम करना चाहिए। इस मामले का क्या हुआ, इसकी जानकारी तो नहीं मिली, मगर इससे नागरिकों की परेशानी का कुछ अंदाजा जरूर मिलता है। दुख इस बात का है कि प्रशासन को इससे कोई परेशानी नहीं होती।

सार्वजनिक मंचों से सरकार की तरफ से कभी-कभी 'फ्लड प्लेन जोनिंग' का शोशा छोड़ा जाता है कि शहरी जमीन के उपयोग पर नियंत्रण किया जाना चाहिए। बाढ़ नियंत्रण की इस विधा का राष्ट्रीय बाढ़ आयोग के अनुसार पहला नियम है कि इस तरह के नुकसान सबसे ज्यादा उस जमीन पर होते हैं, जहां उद्योग-धंधे लगे हुए हैं या जो शहरी क्षेत्र हैं। उसके बाद उस जमीन का नंबर आता है, जिस पर खेती होती है। सबसे कम प्राथमिकता वाली जमीन वह है, जिसका उपयोग मनोरंजन के लिए होता है। जिस जमीन पर कुछ नहीं होता, उसके नुकसान को नुकसान नहीं माना जाना चाहिए।

इसका मतलब तो यही समझ में आता है कि बाढ़ से शहरी क्षेत्रों की सुरक्षा करना व्यवस्था के लिए सबसे बड़ी प्राथमिकता का क्षेत्र है। कृषि या ग्रामीण क्षेत्र की सुरक्षा दोयम दरजे की प्राथमिकता है। इस मापदंड के औचित्य पर तो चर्चाएं होती ही रहती हैं, लेकिन हमारी व्यवस्था जिसको सर्वोच्च प्राथमिकता पर रखती है, अगर उसी का यह हाल है, तो वह कौन सा दरवाजा बचता है, जिसे खटखटाया जाए?

THE HINDU

Date:01-10-19

A test for judicial review in India

U.K. Supreme Court's ruling on Parliament prorogation is an exemplar on how the judiciary should view executive actions

Manuraj Shunmugasundaram is an advocate and spokesperson of the Dravida Munnetra Kazhagam (DMK)

The highest court in the U.K., earlier this month, found that the actions of Prime Minister Boris Johnson to prorogue Parliament were unlawful. The matter had come to be heard before a panel of 11 Justices, the permitted maximum quota of serving Justices, of the Supreme Court. The verdict had the effect of quashing the Queen's order to prorogue Parliament on the advice of the Prime Minister. By doing so, the U.K. Supreme Court asserted its majesty in the constitutional framework and functioned as the true sentinel on the qui vive.

As legal ramifications of this decision ripple through common law countries and constitutional democracies, what is equally startling is the time taken by the country's apex court to hold and conclude these proceedings.

Prorogation in U.K.

It was known that the Boris Johnson-led government had promised to make Britain leave the European Union by October 31, even if that meant an exit without a deal. The suspicion around actions of the government grew when Mr. Johnson advised the Queen to prorogue Parliament for it to reconvene on October 14. The process was widely perceived to be a sharp and calculated move by the government to conclude the Brexit process with minimal parliamentary scrutiny.

This triggered a legal challenge culminating with the Scottish Court of Session finding that the Prime Minister had misled the Queen with regard to the prorogation of Parliament. Simultaneously, the matter was heard by the High Court of England and Wales, which ruled that the prerogative powers of the government were non-justiciable. These conflicting decisions were handed down on September 11. The appeals emanating from these two courts were heard by the Supreme Court between September 17 and September 19 and the judgment was delivered on September 24. The entire judicial approach, in dealing with a matter concerning the "fundamentals of democracy", underlines the effectiveness of the judicial review process when conducted in a timely manner.

The last parliamentary session in the United Kingdom, which began in June 2017 and lasted more than 340 days, was one of the longest in recent history. The government justified that the prorogation was necessary under such circumstances and also for the preparation of the Queen's Speech.

Accepting these arguments, the Scottish Court of Outer House, in the first instance, dismissed the legal challenge on the grounds that this was a matter of "high policy and political judgment" and as such was non-justiciable. Allowing the appeal, the Inner House found that the advice given by Mr. Johnson, which formed the basis for the Queen's order, was justiciable and further, declared it to be unlawful. Upholding this judgment, the Supreme Court confirmed that the prorogation was "unlawful because it had the effect of frustrating or preventing the ability of Parliament to carry out its constitutional functions without reasonable justification." In other countries following the Westminster system of government, this decision should naturally lead to increased introspection of executive actions and provide a boost to due parliamentary processes.

Closer home, there have been at least two key executive actions this year that have undermined parliamentary processes: Reservation for Economically Weaker Sections and the Bills passed around Jammu and Kashmir (J&K). The Constitutional (One Hundred and Third) Amendment Act 2019 providing reservation for Economically Weaker Sections was brought for consideration of Parliament in less than 48 hours from the time the decision was taken by the Centre. By doing so, the government ensured that there was insufficient time for Parliament scrutiny. The Bills around J&K also suffered from a similar defect.

Violation of rules

The Monsoon Session of Parliament was originally scheduled to end on July 26 but was extended to August 7 by the government. On August 5, the Jammu and Kashmir Reservation (Second Amendment) Bill, 2019 was suddenly introduced to the 'Parliamentary List of Business'. When the Rajya Sabha convened, Home Minister Amit Shah, at 11.15 a.m., moved the Statutory Resolution proposing to nullify all clauses in Article 370 apart from Clause(1). Copies of the Bill and the Resolution were not provided to MPs till 11.30 a.m.

The conventional practice is that legislative documents are provided at least a few days before they are tabled. This is done for the MPs understand the contents of the legislation, seek views and formulate their positions better.

The manner in which both these Bills were introduced in Parliament was also in direct violation of the Rules of Procedure and Conduct of Business. In Rajya Sabha, specifically, Rule 69 talks about 'Motions after Introduction of Bills' and 'Scope of Debate'. According to the proviso of Rule 69, there is discretion given to the Chairman in exceptional situations. But, every discretionary power does require that the

Chairman must exercise it judiciously and with proper application of mind. There has been no cogent or detailed explanation given by those presiding our Houses of Parliament as to why the government has been allowed to flout parliamentary rules and convention on more than one occasion.

Such actions of governments of Mr. Johnson and Prime Minister Narendra Modi have revealed a complete disregard for established parliamentary processes. This has placed democratic institutions in the peril of being weakened. While the courts in the United Kingdom have made their determinations on these issues, there is sufficient material for Indian courts to assess whether executive actions have indeed undermined parliamentary processes. How the court responds to this challenge will determine the majesty of the judicial review process in India.

Date:01-10-19

The link between jobs, farming and climate

It is imperative to focus on agricultural production in devising a long-term solution to the problem of unemployment

Pulapre Balakrishnan is Professor, Ashoka University, Sonipat and Senior Fellow, IIM Kozhikode

At a panel discussion hosted recently by the students of Delhi's Ambedkar University, the topic was, 'Are we heading for an economic crisis?' Presumably, they had been prompted by the all-absorbing news of a slowing economy. It is indeed correct that such a slowing is taking place. Growth has slowed for the past few quarters — the past two-and-a-half years, if we go by annual growth rates.

That this has not been comforting to the government is evident from the fact that its Ministers are running from pillar to post in an effort to goose the economy. But should we be worried?

Those who heard the address to the United Nations climate change summit by the teenager Greta Thunberg earlier this month may not be as worried about economic growth as the government is. Globally, industrial growth driven by mindless consumption is the cause of climate change, now unmistakably upon us. But India does need some growth as income levels here are still very low. The problem of low incomes can, however, be tackled even with less growth so long as it is of the appropriate type. So, the slowing of growth in India cannot reasonably be termed a crisis.

Rural unemployment

There is, however, one feature of the economy that does answer positively to the query of whether it is in crisis today, and that is unemployment. Figures reported in the report of the last Periodic Labour Force Survey point to a dramatic rise in the unemployment rate since 2011-12, when the previous survey on

unemployment was undertaken. Apart from the category of 'Urban Females', the most recent estimate of unemployment shows that it is the highest in the 45 years since 1972-73. But even for 'Urban Females', it is double what it was in 2011-12. For the largest cohort, namely 'Rural Males', in 2017-18, it is four times the average for the 40 years up to 2011-12. These figures should convince us of the existence of a grave situation, if not crisis, with respect to employment in the country. In the average country of the OECD, an increase in unemployment of such magnitude would have triggered a nationwide debate, not to mention agitation on the streets.

The government has responded to the slowing of growth by announcing a range of measures, the most prominent of them being the reduction in the corporate tax rate. While this may have a positive effect, the move is not based on the big picture. The tax cut is meant to be a remedy for stagnant corporate investment. But if the level of corporate investment itself reflects some underlying reality, it is only by tackling the latter that we can get to the root of the problem. A large part of corporate sales is driven by rural demand, reflected in the reported lay-offs by biscuit manufacturers. We do not hear their voices or, more importantly, the government does not, as they are less organised than some other sections of the corporate world, the automobile industry being one such.

The rural picture matters not only because the largest numbers are located there but also because of their low incomes. This means that the future growth of demand for much of industrial production is likely to come from there. After all, how many more flat-screen televisions can an urban middle-class household buy once it already possess one? The high unemployment rate for 'Rural Males' does suggest that we have zoomed in up to a reasonable degree of precision on the site of low demand.

Production decline

We must now answer the question of why rural incomes are growing so slowly. The recent history of crop agriculture points towards one reason. In the nine years since 2008-2009, this activity has recorded zero or negative growth in five. Put differently, in the majority of years, it has shown no growth. The economy has very likely not seen anything like this since 1947.

When growth fluctuations include production decline, a particular feature emerges. Households incurring consumption debt in bad crop years would be repaying it in the good ones. This implies that consumption does not grow appreciably even in good years. Recognising the record of agricultural production is sufficient to grasp what we see in India today. This does not imply that other factors do not matter, and we could imagine several, ranging from low export growth to the state of the banking sector, but this does suggest that poor agricultural performance is a significant explanation of slack domestic demand. Unstable agricultural production first lowers the demand for agricultural labour and, subsequently, its supply, showing up in greater unemployment. It has been pointed out that the investment rate has declined. This is indeed correct but this may well be a reflection of the poor agricultural performance. Private investment both follows output growth and leads it. When non-agricultural firms observe slow agricultural growth, they are likely to shrink their investment plans and may not revise their decision till this growth improves. Thus, attempting to influence the private investment rate is to only deal with a symptom. It is rural income generation that is the problem.

Long-term solution

Any long-term solution to the problem of unemployment to which the slowing growth of the economy is related must start with agricultural production. Observing the performance of crop agriculture for close

to a decade since 2008-09, we might say that we are witnessing something wholly new in India. It has long been recognised that there is a crop-yield cycle related to annual variations in rainfall but we are now witnessing a stagnation. Now, unlike in the case of a cycle, recovery cannot simply be assumed. We would need the expertise of agricultural scientists to confirm what exactly is responsible for this state but it would not be out to place to ask if there is not a role for ecological factors in causing agricultural stagnation. These factors encompass land degradation involving loss of soil moisture and nutrients, and the drop in the water table, leading to scarcity which raises the cost of cultivation. Almost all of this is directly man-made, related as it is to over-exploitation or abuse, as in the case of excessive fertilizer use, of the earth's resources. Then there the increasingly erratic rainfall, seemingly god-given but actually due to climate change entirely induced by human action. A deeper adaptation is required to deal with these factors. Intelligent governance, resource deployment and change in farmer behaviour would all need to combine for this.

It is significant that the reality of an unstable agricultural sector rendering economy-wide growth fragile has not elicited an adequate economic policy response. Policy focus is disproportionately on the tax rate, the ease of doing business in the non-agricultural sector and a fussy adherence to a dubious fiscal-balance target. It is now time to draw in the public agricultural institutes and farmer bodies for their views on how to resuscitate the sector. We may be experiencing an ecological undertow, and it could defeat our best-laid plans for progress.